डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

कहानी

सीढ़ियाँ

इंतिज़ार हुसेन

अनुवाद - शाहीना तबस्सुम

बशीर भाई डेढ दो मिनट नितांत चुप बैठे रहे. यहाँ तक कि अख़्तर को बेकली बल्कि फ़िक होने लगी. उन्होंने धीरे से एक ठंडा साँस लिया और जरा हिले-डुले तो अख्तर की जान में जान आयी मगर साथ में ही यह धड़का कि न जाने उनकी जबान से क्या निकले।

"वक्त क्या था?"

"वक्त?" अख्तर सोच में पड़ गया। "वक्त का तो ध्यान नहीं है।"

"वक्त का ध्यान रखना चाहिए।" बशीर भाई उसी गम्भीर लहजे में बोले, "उसके बगैर तो बात ही पूरी नहीं होती। अव्वले शब (रात का प्रारिम्भक समय) है तो ऐसी फिक्र की बात नहीं, शैतानी। शब (रात्रि बुरे विचार) आते हैं जिनकी बुनियाद नहीं। आखिरे-शब (रात का अन्तिम भाग) है तो सदका। दान दे देना चाहिए।"

अख्तर का दिल धड़कने लगा था। रंजी उसी तरह खामोश था। बस आँखों में आश्चर्य की कैंफियत ज्यादा गहरी हो गयी थी।

"मेरी आदत है कि वक्त जरूर देख लेता हूँ," बशीर भाई की आवांज अब जरा जाग चुकी थी, "और फिर अपना तो ऐसा किस्सा है कि कुछ होना होता है तो जरूर पहले दिख जाता है। और हमेशा तड़के में आँख पट से खुल जाती है। लगता है कि अभी जागते में कुछ देखा था...यहाँ जब मैं आया हूँ तो कई महीने हैरान-परेशान फिरता रहा। बड़ा परेशान। बेहतरी की कोई सूरत न निकले। खैर ! एक रोंज क्या देखता हूँ कि नाना मरहूम हैं, मस्जिद से निकले हैं, हाथ में पेड़ों का दौना है, तांजा हरे पत्ते का दौना। दौने में से एक पेड़ा लिया है और मुझे दे रहे हैं...पट से आँख खुल गयी...सुबह की अजान हो रही थी। उठा, वजू किया और नमाज को खड़ा हो गया...यह समझ लो कि तीसरे दिन नौकरी मिल गयी।"

रंजी और अख्तर बड़ी तन्मयता से सुन रहे थे। सैयद उसी तरह उनकी चारपाइयों की तरफ करवट लिये आँखें बन्द किये लेटा था और सोने की कोशिश कर रहा था।

"बशीर भाई", अख्तर बोला, "मुझे तो मुर्दे बहुत ही दीखते है। यह क्या बात है?"

"मुर्दे को देखना बरकत की निशानी है। उम्र ज्यादा होती है।"

"मगर...यह...?" अख्तर झिझक गया।

"हाँ, इसकी सूरत जरा मुख्तलिफ हो गयी है," बशीर भाई अपने लहजे से यह साबित कर रहे थे कि कोई बहुत ज्यादा फिक्र की बात नहीं है। "मुर्दे को साथ खाते देखना कुछ अच्छा नहीं...अकाल की निशानी है।" बशीर भाई चुप होते होते फिर बोले, और अबके कुछ ऊँची आवांज में, "मगर तुम्हें तो वंक्त का पता नहीं। बे-वंक्त ख्वाब पर ऐतबार नहीं करना चाहिए। एहतियातन सदका दे दो।"

सैयद ने झुँझलाहट से करवट ली और उठकर बैठ गया। "यारों तुम कमाल लोग हो। और अख्तर तो, मैं जानूँ, सोता ही नहीं। आधी रात तक ख्वाब बयान करता है, आधी रात के बाद ख्वाब देखने शुरू करता है। क्यों भई अख्तर, तुझे सोने को घड़ी दो घड़ी मिल जाती है?"

अख्तर गरमाये हुए लहजे में बोला, "अजब आदमी हो, हर बात को मंजाक में लेते हो।"

"अजब आदमी तो तुम हो, रोज ख्वाब देखते हो। आखिर मैं भी तो हूँ, मुझे क्यों ंख्वाब नहीं दीखते।"

"ं□□□□□□ तो खैर आदमी की फितरत है, सब ही को दीखते हैं, बस कम ंज्यादा की बात है," बशीर भाई कहने लगे।

"मगर मेरी फितरत कहाँ रफू चक्कर हो गयी। मुझे तो सिरे से ंख्वाब दीखता ही नहीं।"

"बिलकुल नहीं दीखता?" अख्तर ने हैरानी से पूछा।

"जिस रोज से आया हूँ, उस रोज से तो कम-अज-कम बिलकुल नहीं दीखा।"

"हद हो गयी! सुन रहे हो बशीर भाई?"

"हद तो तुम्हारे साथ हुई है," सैयद कहने लगा, "मैं हैरान हूँ कि इस डेढ़ बालिश्त के कोठे पे तुम कैसे ख्वाब देख लेते हो। कमाल कोठा है, चार चारपाइयों में छत छुप जाती है। रात को कभी उठना हो तो चारपाई से कदम उतारते हुए लगता है कि गली में गिर पड़ूँगा...हमारे घर की छत थी कि...,"कहते-कहते रुका, फिर अहिस्ता से बोला, "गये को क्या रोना! अब तो शायद जाती हुई ईटें भी बाकी नहों।"

सैयद ने उठकर मुँडेर पर रखी हुई सुराही से पानी पिया। कहने लगा, "पानी गर्म है। कब की भरी हुई है सुराही?"

"भरी हुई तो तीसरे पहर ही की है," बशीर भाई बोले, "मगर यह ऊडी हो गयी है अब कल को कोरी सुराही लाएँगे।"

"लालटेन की बत्ती मंदी कर दूँ?" सैयद पूछने लगा, "बुरी लगती है रोशनी।"

"कम कर दो और कोने में रख दो। अब थोड़ी देर में तो चाँद भी निकल आएगा," बशीर भाई ने जवाब दिया।

सैयद ने लालटेन को कम करते-करते हिला के देखा। "तेल कम है, रात को गुल न हो जाए।" वह मुँह ही मुँह में बुड़बुड़ाया और बुझती हुई बत्ती को को इक ंजरा ऊँचा कर लालटेन एक तरफ मुँडेर के नीचे रख दी। लालटेन की हलकी रोशनी एक छोटे से कोने में सिमट गयी और छत पे ऍधेरा छा गया। बिस्तर यूँ रंजी और अख्तर की चारपाइयों पर भी थे लेकिन इस ऍधेरे में सैयद का चाँदनी बिस्तर चमक रहा था। बशीर भाई की चारपाई पे बिस्तर के नाम पर बस एक दोसूती थी जो उन्होंने समेट कर तकिये की तरह सिरहाने रख ली थी और छत पे छिड़काव करते हुए एक भरा लोटा अपनी खर्री चारपाई पे छिड़क दिया था, जिसकी वजह से उनकी नंगी पीठ ही को तरी नहीं पहुँच रही थी, बल्कि भीगे बानों की सौंधी खुशबू ने उनके सूँघने की शक्ति को भी सुगन्धित कर रखा था।

"बशीर भाई!" रंजी बहुत देर से गुमसुम बैठा था। उसने खँखार के गला सांफ किया और फिर बोला, "बशीर भाई, ंख्वाब में बड़ा अलमv देखें तो कैसा है?"

बशीर भाई ने सोचते हुए जवाब दिया, "बहुत मुबारक है, लेकिन ख्वाब बयान करो।"

अख्तर रंजी की तरफ तन्मयता से ध्यान देने लगा। सैयद ने आहिस्ता से करवट बदली और दूसरी तरफ मुँह कर लिया। उसने फिर आँखें बन्द करके सोने की कोशिश शुरू कर दी थी।

"वह दिन याद है ना बशीर भाई आपको कि आप नमाज के लिए उठे थे और मुझसे पूछ रहे थे कि आज इतनी सवेरे कैसे उठ बैठे। असल में उस रात मुझे नींद ही नहीं आयी। जानें क्या हो गया, रात करवटें लेते गुजर गयी। और तरह-तरह के खयाल वसवसे, दिल में पैदा होने लगे, सुबह के होते एक झपकी-सी आयी, क्या देखता हँ कि..." रंजी की जबान जरा-जरा लड़खड़ाने लगी और बदन में कँपकँपी-सी पैदा हुई "...कि हमारा इमामबाड़ा है। और...इमामबाड़ा है और वाँ बड़ा अलम निकल रहा है...बड़ा अलम, बिलकुल उसी तरह, वही सब्ज लहराता हुआ पटका, लचकता हुआ चाँदी का पंजा, ऐसा चमक रहा था। पंजा,ऐसा कि मेरी आँखों में चकाचौंध हो गयी। बस, इतने में मेरी आँख खुल गयी।"

बशीर भाई लेटे से उठकर बैठ गये थे और आँखें उन्होंने बन्द कर ली थीं। अख्तर पे ऐसा रौब तारी हुआ था कि सारा जिस्म सकते में आ गया था। खुद रंजी के जिस्म में अब तक एक हलकी-सी कँपकँपी बाकी थी। सैयद ने भी करवट लेकर उनकी तरफ मुँह कर लिया था। बन्द आँखें खुल गयी थीं और जहन के ऍधेरे में एक छेद-सा बन रहा था कि एक किरन उससे छनकर रोशन लकीर बनाती हुई अन्दर पहुँच रही थी। अंजाख़ानेv के लोबान (एक सुगन्धित गोंद) से बसे हुए अँधेरे में चमकते हुए अलम, चाँदी और सोने का सा प्रकाश देते हुए पंजे, सब्जो-सुंर्ख रेशमी पटकों के सुनहरी रूपहली गोटे से टँके हुए किनारे, बीच छत में लटका हुआ वह झमक-झमक करता हुआ झाड़, जिसमें शीशे की संफेद-संफेद कोनेदार अनगिनत फलियाँ लटक रही थीं, जिसकी एक टूटी हुई फली नामालूम तरीके पर जाने कहाँ से उसके पास आ गयी थी, बाहर से सफेद और एक आँख बन्द करके दूसरी आँख पे लगा के देखो तो अन्दर से सात रंग...

"बहुत अजब ख्वाब है," अख्तर बड़बड़ाया।

"ख्वाब नहीं है," बशीर भाई हौले से बोले।

अख्तर और रंजी दोनों उन्हें तकने लगे।

बशीर भाई ने सवाल किया, "तुम सो गये थे या...?"

"पूरी तरह सोया भी नहीं था, बस एक झपकी-सी आयी थी।"

बशीर भाई सोच में पड़ गये। फिर आहिस्ता से बोले, "ख्वाब नहीं था। बशारत (शुभ सूचना की आस घोषणा) हुई है।"

रंजी खामोशी से उन्हें तकता रहा। उसकी आँखों में मानी की कैंफियत देर से तैर रही थी। अब अचानक खुशी की चमक लहरायी। लेकिन जल्द ही यह लहर मद्धम पड़ गयी।

और उसकी जगह चिन्ता की कैफियत ने ले ली।

"अब के बरस," वह चिन्ताग्रस्त धीमी आवांज में बोला, "हमारे इमामबाड़े में बड़े अलम का जुलूस नहीं निकला था।"

"क्यों?"

बशीर भाई और अख्तर दोनों चिन्तित हो गये।

"हमारे खानदान के सब लोग तो याँ पे चले आये थे। बस मेरी माँ जी वाँ रह गयी थीं, उन्होंने कहा था कि मरते दम तक इमामबाड़ा नहीं छोड़ूँगी। हर साल अकेली मुहर्रम का इन्तंजाम करती थीं और बड़ा अलम उसी शान से निकलता था।"

"फिर?"

"बहुत बूढ़ी हो गयीं थीं वह। मैं पहुँच भी नहीं सका। बस..." उसकी आवांज भर्रा गयी। आँखों में आँसू झलक आये।

बशीर भाई और अख्तर के सिर झुक गये। सैयद उठ के बैठ गया था।

बशीर भाई ने ठंडा साँस लिया।

"एक घर में रहते हो और तुमने बताया भी नहीं," अख्तर बहुत देर के बाद बोला।

"क्या बताता!"

बशीर भाई और अख्तर फिर गुमसुम हो गये। उनके जहन कुछ खाली से हो गये थे।

सैयद के जहन में खिड़की-सी खुल गयी थी और किरन ऍंधेरे में आड़ा-तिरछा रास्ता बनाती हुई सफर कर रही थी। मुहर्रम के दस दिनों और चिहिलुम के कुछ दिनों के अलावा साल भर उसमें ताला पड़ा रहता था। अनजान को जानने की ख्वाहिश जब बहुत जोर करती तो वह चुपके-चुपके दरवाजे पे जाता,किवाड़ों की दरारों में से झाँकता, वहाँ से कुछ नंजर न आता तो किवाड़ों के जोड़ों पे पैर रख ताला लगी हुई कुंडी पकड़ दरवाजे से ऊपर वाली जाली में

से झाँकता रहता। यहाँ तक कि ऍंधेरे में नंजर सफर करने लग पड़ती और झाड़ झिलमिल-झिलमिल करने लगता। बहुत देर हो जाती और इससे ज्यादा कुछ नंजर न आता और उसका दिल रौब खा के आप ही आप धड़कने लगता और वह आहिस्ता से उतर कर बाहर हो लेता। तहखाना, जिसकी खिड़की अँधेरिया जीने में खुलती थी, इससे भी ज्यादा अन्धकारमय था। उसके अँधेरे से उस पर रौब तारी नहीं होता थाबस डर लगता था। उसमें रहने वाला कौड़ियाला साँप अगरचे अम्मा जी बयान के मुताबिक बगैर छेड़े किसी से कुछ न कहता था। सुनते हैं एक दफा रात को जीने पे चढ़ते हुए उनका हाथ भी इस गिलगिली चीज पे पड़ गया था, मगर वह बगैर फुँकारे सड़-सड़ करता हुआ खिड़की के अन्दर घुस गया। फिर भी खिड़की में खड़े होकर जमकर तहखाने के ऍंधेरे का जायजा लेने की हिम्मत उसे भी न हुई। कौड़ियाले साँप को वह कभी न देख सका, लेकिन बन्दी कसमें खाती थी कि उसने अपनी आँख से उसे देखा है।

"झूटी।"

"अच्छा तो मत मान।"

"खा कसम अल्ला की।"

"अल्ला की कसम"

उसे फिर भी पूरी तरह यकीन नहीं आया। "अच्छा कैसा था वह?"

"काला, काले पे सफेद कौड़ियों-सी, कौड़ियाँ...मैंने जो झाँका तो दिवाल पे चढ़ रिया था। झट से मैंने खिड़की बन्द कर ली।"

उसका दिल धड़-धड़ करने लगा। वो एक दूसरे को तकने लगे। सहमी-सहमी नजरें धड़-धड़ करते हुए दिल सीढ़ियों पे बैठे-बैठे वो एक साथ उठ खड़े हुए और उतर कर सहन में कुएँ की पक्की मन पे जा बैठे।

दोनों कुएँ में झाँकने लगे। उजाला मद्धम पड़ते-पड़ते हलका-हलका साया बना जो गहरा होता गया, फिर बिलकुल ऍंधेरा हो गया। ऍंधेरे की तह में लहरें लेता हुआ पानी जहाँ-तहाँ बिजली की तरह चमकता और अँधेरिया होता जाता या चमकती काली पड़ती लहरों पे दो परछाइयाँ।

"जिन्न।"

"हट बावली। जिन्न कहीं कुएँ में रहते हैं।"

"फिर कौन हैं ये?"

उसने बुंजुर्गों के लहजे में जवाब दिया, "कोई भी नहीं है। तू तो पगली है...अच्छा देख, मैं आवांज लगाता हूँ।" और उसने कुएँ में मुँह डाल के जोर से आवांज दी, "कौन है?" अँधेरे में एक गूँज पैदा हुई और चमकती काली पड़ती लहरिया आवांज पैदा हुई, "कौन है?" दोनों ने डर के जल्दी से गरदनें बाहर निकाल लीं।

"अन्दर कोई है!" बन्दी का दिल धक-धक कर रहा था।

"कोई भी नहीं।" उसने इस बेपरवाही से जवाब दिया जैसे वह बिलकुल नहीं डरा है।

वो दोनों चुपचाप बैठे रहे। फिर वह डर आप-ही-आप खत्म होने लगा। बन्दी ने बैठे-बैठे एक साथ सवाल किया, "सैयद, कुएँ में इतना बहुत-सा पानी कहाँ से आता है?"

वह उसकी जहालत पे हँस पड़ा, "इत्ता भी नहीं पता। जमीन के अन्दर पानी ही पानी है। कुएँ का पानी जब ही तो कभी खत्म नहीं होता।"

"जमीन के अन्दर अगर पानी भरा हुआ है," वह सोचते हुए बोली, "तो फिर साँप कहाँ रहते हैं?"

साँप कहाँ रहते हैं? वह भी सोच में पड़ गया। साँप पानी का थोड़े ही बस जमीन का बासी है। जमीन के अन्दर पानी है तो साँप कहाँ रहता होगा? और फिर राजा बासठ का महल कैसे बना होगा?

इतना देर में बन्दी ने दूसरा सवाल कर डाला, "सैयद, साँप पहले जन्नत में रहता था?"

"हाँ।"

"जन्नत में रहता था तो जमीन पे कैसे आ गया?"

"उसने गुनाह किया था। अल्ला मियाँ का अजाब (प्रकोप) पड़ा। उसकी टाँगें टूट गयीं और वह ंजमीन पे आ पड़ा।

गुनाह, बन्दी की आँखों में फिर डर झलकने लगा। और फिर दोनों का दिल हौले-हौले धड़कने लगा।

फिर बन्दी उठ खड़ी हुई, "हमें तो प्यास लग रही है। हम घर जा रिये हैं।"

उसने जल्दी से मन पे पड़ा हुआ चमड़े का डोल सँभाल लिया, "कुएँ का पानी पीएँगे। बहुत ठंडा होता है।" और उसने फुर्ती से कुएँ में डोल डाला। रस्सी उसकी उँगलियों और हथेलियों की जिल्द को रगड़ती-छीलती तेजी से गुंजरने लगी और फिर एक साथ पानी में डोल के डूबने का मीठा-सा शोर हुआ, जिससे उसके सारे बदन में मिठास की एक लहर-सी दौड़ गयी। दोनों मिलकर भरा डोल खींचने लगे और दिलों में एक अजब-सी लंज्जत जागने लगी। मीठे ठंडे पानी से भरा डोल जब बाहर आया तो पहले बन्दी ने डोल थामा और उसने ओक से जी भर के पानी पिया और फिर डोल थाम के बन्दी के गोरे हाथों की ओक में पानी डालना शुरू किया। गोरे हाथों से बनी हुई ढलवाँ गहरी होती हुई ओक, मोती-सा पानी, पतले-पतले होंठ, उसने एक बार पानी की धार इतनी तेज की कि उसके कपड़े तर-ब-तर हो गये और गले में फन्दा लग गया...

"असल में वह मन्नत का अलम था," रंजी कह रहा था, "हमारी अम्माँ के कोई औलाद नहीं होती थी। वह कर्बला-ए-मुअल्ला गयीं। इमाम के रौंजे पे तो हर शख्स जा के दुआ माँग लेता है। वह साबिर हुए ना। मगर...अम्माँ कहती थीं कि छोटे हंजरत की दरगाह पे वो जलाल (तेंज) बरसता है कि वाँ दाखिल होते ही कम्पन हो जाती है। कोई दिन नहीं जाता कि मोजंजाv न होता हो। जिस वक्त अम्माँ पहुँची हैं उसी वक्त एक अंजीब वाकया हुआ। एक शख्स दरगाह से निकल रहा था। निकलते निकलते दरवांजे ने उसके पैर पकड़ लिये, न आगे हिल सकता है, न पीछे हट सकता है और बदन सुर्ख जैसे बिजली गिरी हो...उसकी माँ जारों-कतार रोवे। बहुत देर हो गयी तो एक खिदमत-गार पास आया कि बीवी, तेरे बेटे से कोई बेअदबी हुई। छोटे हंजरत को जलाल आ गया है। अब तू इमाम की

सरकार में जा। वह मना सकते हैं छोटे हंजरत को। माँ रोती पीटती इमाम के रोजे पे गयीं और जरीह पकड़ ली..." उसकी आवांज में सरगोशी की कैंफियत पैदा होने लगी, "इतने में क्या देखते हैं कि दरगाह में रोशनी-सी फैल गयी और अचानक उस शख्स की हालत दुरुस्त हो गयी।"

"कमाल है," अख्तर ने बहुत आहिस्ता से कहा।

बशीर भाई ने एक जमुहाई ली और गुम मथान हो गये।

"उसने असल में झूठी कसम खायी थी," रंजी आहिस्ता से बोला।

बशीर भाई और अख्तर की खामोशी से फायदा उठाकर रंजी फिर शुरू हो गया, "हाँ तो अम्माँ ने कहा, 'जो हो सो हो दरगाह से गोद भर के जाऊँगी।'रातभर जरीह को पकड़े दुआ माँगती रहीं, रोती रहीं, तड़के में एक साथ आँख झपक गयी। क्या देखती हैं कि दरगाह में शेर दाखिल हो रहा है। हड़बड़ा के आँख खोल दीं। सामने अलम पे नंजर पड़ी। पंजे से किरनें फूट रही थीं और एक तांजा चमेली का फूल अम्माँ की गोद में आ पड़ा..."

"हाँ साब, बड़ी बात है उनकी," बशीर भाई आवांज को इक ंजरा ऊँचा करते हुए बोले।

"वह अलम", रंजी की आवांज में एक अजीब-से ख्वाब की सी कैंफियत पैदा हो गयी थी, "असली अलम है। फुरात में से निकला था। जरीह के सिरहाने सब्ज पटके में लिपटा खड़ा रहता है। अजब दबदबा टपकता है। और आशूरा (मुहर्रम की दसवीं तारींख) को उससे ऐसी शुआएँ फूटती हैं कि उस पर निगाह नहीं ठहरती...जैसे सूरज चमक रहा हो..."

सैयद को सचमुच लग रहा था कि शुआएँ उसकी आँखों को चकाचौंध कर रही हैं और आँखों से होती हुई जहन की ऍधेरी कोठरी में लहरिये बनाती हुई चल रही हैं। ऍधेरी कोठरी लौ दे रही थी और ढके-छुपे कोने उजियाले हो रहे थे। जगमगाते ऍधेरे प्रकाशमान ख्वाब, दमकता चेहरा, लौ देते अलम, लौ देती पतंगें। पतंग कि कट के चलती तो लगता कि बन्दी रूठ के जा रही है। बन्दी कि कटकर के जाती दिखाई देता कि पतंग कट गयी। ख्वाब कि सीढ़ियाँ तय करता चला जा रहा है और सीढ़ियाँ लहरिये निवाड़ की तरह फैलती खुलती चली जा रही हैं और पतंग की डोर चुटकी में आते-आते निकल गयी है। सीढ़ियाँ जो कभी सुरंग में से होती हुई निकलतीं। और कभी खुली हुई जगह में ऊँची होती चली जातीं। वह चढ़ता चला जाता, चढ़ता चला जाता, फिर उसका दिल धड़कने लगता कि अब गिरा। फिर किसी गहरे कुएँ में गिरने लगता, आहिस्ता-आहिस्ता, गिरते-गिरते फिर उठने लगता, और डर से एक साथ उसकी आँख खुल जाती।

"अम्माँ जी, मैंने ख्वाब देखा कि मैं जीने पे चढ़ रहा हूँ।"

"पैगम्बरी ख्वाब है बेटा। तरक्की करोगे, अंफसर बनोगे।"

"अम्मा जी, ख्वाब में अगर कोई पतंग उड़ती देखे?"

"नहीं बेटा, ऐसे ख्वाब नहीं देखते।" अम्माँ जी बोलीं,

"पतंग देखना अच्छा नयीं, परेशानी बे-वतन होने की निशानी।"

"अम्मा जी मैंने ख्वाब देखा कि जैसे मैं हूँ, जीने पे चढ़ रहा हूँ, चढ़ता चला जा रहा हूँ। बहुत देर बाद कोठा आया है और जीना गायब...और मैं कोठे पे अकेला खड़ा रह गया हूँ और पतंग..."

"नयीं बेटा, यह ख्वाब नयीं है," अम्माँ जी ने उसकी बात काट दी, "दिन भर तू कोठों-छतों को खँदे है, वही सोते में भी खयाल रहवे है...ऐसे ख्वाब नहीं देखा करते।"

"अम्माँ जी, मैंने ख्वाब देखा कि जैसे हमारा कोठा है और मुँडेर पे एक बंदर..."

अम्माँ जी ने बात काट दी और अब के डाँट के बोलीं, "अच्छा अब तू सोवेगा नयीं।"

"अच्छा अम्मा जी, वह कहानी तो पूरी कर दो।"

"हाँ तो कहाँ तक वह कहानी हुई थी? खुदा तुम्हारा भला करे..."

"शहजादी ने पूछा कि तुम कौन हो।"

"हाँ, खुदा तुम्हारा भला करे, शहंजादी उसके सिर हुई कि यह बता दे तू कौन है। उसने बहुत मना किया कि नेकबख्त तू नुंकसान उठावेगी, मत पूछ। मगर शहंजादी अटवाँटी-खटवाँटी ले के पड़ गयी कि जब तक तू बताएगा नयीं, बात नयीं करूँगी। 'अच्छा बीवी, तेरी यही मंशा है तो चल दरिया पे, वाँ बताऊँगा।' दोनों चल पड़े। दरिया पे पहुँच गये। बोला कि देख मत पूछ। बोली कि जरूर पूछूँगी। वह दरिया में उतरने लगा। पानी सीने तक आ गया, फिर बोला कि नेंकबख्त मान जा, मत पूछ। बोली कि जरूर पूछूँगी। गर्दन तक आया। फिर मना किया, फिर न मानी। फिर मुँह तक आया। फिर कहा कि देख पछतावेगी, अब भी वंक्त है। उसने कहा, जरूर पूछूँगी। उसने गोता लगाया। अन्दर से काला फन निकला और फिर पानी में गायब हो गया..."

"चाँदी से उस फूल को छुवा करके अलम बनवाया था। उसी साल मेरी पैदाइश हुई।"

"पाकींजा समझना चाहिए उसे।" बशीर भाई बोले।

"मगर..." रंजी की जबान लड़खड़ाने लगी और बदन में कम्पन पैदा हो गया। "मगर वह..."

"क्या मतलब?" बशीर भाई ने सवाल किया।

"वह गायब हो गया।"

"कैसे?" बशीर भाई और अख्तर दोनों चौंक पड़े।

"उस साल जुलूस नहीं निकला।" रंजी के बदन में अब तक थरथरी थी। "एक हमारे पड़ोसी हैं। कहते थे कि इमामबाड़े में उस रात किसी ने चिरांग तक नहीं जलाया। सुबह की नमांज को मैं उठा तो देखा कि इमामबाड़े में गैस की सी रोशनी हो रही है...सुबह को जाके देखा तो यह मांजरा नंजर आया कि सब अलम रखे हैं। बड़ा अलम गायब..."

धुँधलाते हुए अँधेरे फिर रोशन होने लगे। कुएँ की मन पे बैठे-बैठे अचानक धूप में एक पतंग का साया डगमगाता नंजर आया। 'पतंग' और दोनों तीर की तरह जीने में और जीने से जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ चढ़ते हुए कोठे पे हो लिये।

"किधर गयी?" उसने चारों तरंफ निगाह दौड़ायी।

बन्दी ने यकीन के साथ कहा, "गिरी तो इसी छत पे है।"

"इस छत पे है तो फिर कहाँ है?"

और एक साथ बन्दी की गिरंफ्त उसकी आस्तीन से फिर आस्तीन के साथ बाजू पे जकड़ती चली गयी,
"सैयद...बन्दर..."

वह डर गया। "कहाँ?"

'वह', उसने आँखों से दीवार की तरंफ इशारा किया।

दीवार पे एक बड़ा-सा बन्दर बैठा था। दोनों को देख के ऊँघते-ऊँघते एक साथ खड़ा हो गया, और बदन के सारे बाल काँटों की तरह खड़े हो गये। उनके पाँव जहाँ के तहाँ जमे रहे गये और जिस्म सुन्न पड़ गया। बन्दर खड़ा रहा, गुर्राया, फिर आहिस्ता-आहिस्ता मुँडेर पे चलता हुआ दीवार के सहारे नीचे गली में उतर के आँखों से ओझल हो गया।

जब वो वापस जीने में पहुँचे तो दिल धड़-धड़ कर रहे थे और बदन से पसीने की तल्लियाँ चल रही थीं। बन्दी ने अपनी कमींज से मुँह पोंछा, गर्दन सांफ की, बिगड़ी हुई लटें सँवारीं। फिर वो दोनों सीढ़ी पे बैठ गये। उसने सहमी-सहमी नंजरों से बन्दी को देखा जिसकी दहशतजदा आँखें जीने के अँधेरे में कुछ और ज्यादा दहशतंजदा लग रही थीं। वह डर गया। "चलो!" वह बेइरादा उठ खड़ा हुआ। दोनों सीढ़ियाँ उतरने लगे। उतरते-उतरते पहले मोड़ पे वह रुका और अँधेरे जीने से बाहर उस रोशनदान में देखने लगा जिसमें से नंजर आने वाला रोशनदान और उससे परे फैले हुए दरंखत एक विचित्र दुनिया-सी लगते थे।

"उधर मत देखो!" बन्दी ने उसे खबरदार किया।

"क्यों?"

"उधर एक जादूगरनी रहती है," वह अपनी खौंफंजदा आँखों को चमका के कहने लगी, "उसके पास एक आईना है। जिसे वह आईना दिखाती है वह उसके साथ लग लेता है।"

"झूटी।"

"अल्ला की कसम।"

उसने डरते-डरते एक बार फिर रोशनदान में से झाँका, "कहीं भी नयीं है।"

"अच्छा मैं देखूँ," वह रोशनदान की तरंफ बढ़ी।

उसने बहुत कोशिश की लेकिन रोशनदान तक उसका मुँह नहीं पहुँच सका। उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा, "सैयद हमें दिखा दे!"

उसने बन्दी को इस अन्दांज से सहारा दिया कि सीढ़ी से उसके पैर उठ गये और चेहरा रोशनदान के सामने आ गया, और उसे लगा कि जैसे मीठे पानी से भरा डोल उसने थाम रखा है...

अँधेरे में उतरती हुई किरन उलझ कर टूट गयी। उसने करवट ली और उठकर बैठ गया। अख्तर, बशीर भाई, रंजी, तीनों सोये पड़े थे। बल्कि बशीर भाई ने तो बांकायदा खर्राटे भी लेने शुरू कर दिये थे। चाँद चढ़ने लगा था। और चाँदनी उसके सिरहाने से उतरती हुई पाँयती तक फैल चुकी थी। वह उठकर मुँडेर के नीचे वाली ऍंधेरे में छुपी हुई उस नाली पर पहुँचा जो बरसात में बारिश के पानी के निकास के लिए और बाकी दिनों में पेशाब करने के काम आती थी। फिर वहाँ से उठकर उसने सुराही से शीशे के गिलास में पानी उँडेला और गट-गट भरा गिलास पी गया। पानी अब खासा ठंडा हो गया था। कोने में रखी हुई लालटेन को उसने देखा कि बुझ चुकी है। चारपाई पे लेटते हुए उसकी नंजर रंजी पे पड़ी और उसे ऐसा लगा कि वह अभी सोया नहीं है।

"रंजी।"

रंजी ने आँखें खोल दीं, "हँ।"

"सोये नहीं तुम?"

"सोने लगा था कि तुम्हारी आहट से आँख खुल गयी।"

दोनों चुप हो गये। रंजी की आँखें आहिस्ता-आहिस्ता बन्द होने लगीं। अख्तर और बशीर भाई उसी तरह सोये पड़े थे। अब अख्तर ने भी आहिस्ता-आहिस्ता खर्राटे लेने शुरू कर दिये थे।

उसने लम्बी-सी जमुहाई ली और करवट लेते हुए फिर रंजी को टहोका, "रंजी, सो गये क्या?"

रंजी ने फिर आँखें खोल दीं, "नहीं, जागता हँ।" उसने नींद से भरी हुई आवांज में जवाब दिया।

"रंजी," उसने बड़ी सादगी से, जिसमें दुख भी शामिल था, पूछा, "मुझे आखिर ख्वाब क्यों नहीं दीखते?"

रंजी हँस दिया, "अब जरूरी तो नहीं कि हर शंख्स को रोंज ख्वाब ही दीखा करें।"

दोनों फिर चुप हो गये। रंजी की आँखों में नींद तैर रही थी। वह करवट लेकर फिर आँखें बन्द कर लेना चाहता था कि सैयद ने उसे फिर सम्बोधित कर लिया, "मैंने बचपन में एक ख्वाब देखा था कि...एक पतंग के पीछे मैं जीने पे चढ़ रहा हँ और सीढ़ियाँ हैं कि..."

"यह ख्वाब है?" रंजी हँस दिया, "भई ये तो इधर-उधर के खयालात होते हैं, जो रात को सोते में सामने आ जाते हैं।"

सैयद सोच में पड़ गया। क्या वाकई यह ख्वाब नहीं है। वह सोचने लगा। तो क्या फिर उसकी सारी जिन्दगी ही ख्वाबों से खाली है। उसे कभी कोई ख्वाब नहीं दिखाई दिया? उसके खयालों ने, यादों में तैरते झिलमिल करते कई

गालों को चुटकी में पकड़ा, मगर फिर उसे याद आया कि वो ख्वाब तो नहीं, असली वांकयात हैं। उसने अपनी पूरी पिछली ंजिन्दगी पे निगाह दौड़ाई। हर वाकये में, हर गोशे में एक ख्वाब की कैंफियत दिखाई दी, मगर कोई ख्वाब गिरफ्त में न आ सका। उसे यूँ महसूस हुआ कि ख्वाब उसके अतीत में रिलमिल गये हैं या वह कोई अबरंक मिला गुलाल है कि रोशनी के जर्रों ने उसमें दमक तो पैदा कर दी है, मगर वो अलग नहीं चुने जा सकते, या इमामबाड़े में टँगे झाड़ की कोई फली है कि बाहर से संफेद, अन्दर रंग ही रंग, जिन्हें बाहर नहीं निकाला जा सकता, या कुएँ की गहराई में चमकता काला पड़ता पानी कि दोनों में फर्क नहीं किया जा सकता।

"रंजी, जागते हो?"

"हूँ।" रंजी की आवांज नींद से बोझिल हो चुकी थी।

"अब इतने लम्बे ख्वाब के बाद कोई क्या ख्वाब देखे!" वह बड़बड़ाने लगा, "मुझे तो अपना वह मकान ही इक ख्वाब-सा लगता है। जीने में चलते हुए लगता कि सुरंग में चल रहे हैं। एक मोड़ के बाद दूसरा मोड़, दूसरे मोड़ के बाद तीसरा मोड़यूँ मालूम होता कि मोड़ आते चले जाएँगे, सीढ़ियाँ फैलती चली जाएँगी कि इतने में एकदम से खुली रोशन छत आ जाती। लगता कि किसी अजनबी देश में दांखिल हो गये हैं...कभी-कभी तो अपनी छत पे अजब वीरानी-सी छायी होती। ऊँचे वाले कोठे की मुँडेर पे कोई बन्दर ऊँघते-ऊँघते सो जाता, जैसे अब कभी नहीं उठेगा। फिर कभी एक साथ झुरझुरी लेता और कोठे से नीचे की छत पे और नीचे की छत से जीने की तरंफ...हम दोनों का दिल धड़कने लगा। वह आहिस्ता-आहिस्ता ऍधेरे जीने की सीढ़ियों पे उतरता रुकता नीचे आया। हम दालान के खम्भे के पीछे छुप गये। वह कुएँ की मन पे जा बैठा...बैठा रहा...फिर गायब हो गया...या शायद कुएँ में उतर गया हो..."

रंजी की नींद गायब होने लगी। उसने गौर से सैयद की तरंफ देखा। वह फिर शुरू हो गया, "हम कुएँ में झाँकने लगे। फिर हम ंजोर से चिल्लाए, "कौन है?" सारा कुआँ गूँज गया और एक लहरिया किरन पानी में से उठकर ऍधेरे में पेच बनाती बलखाती बाहर निकल सारे आँगन में फैल गयी, जैसे किसी ने रात में महताबी जलायी हो। चमकते हुए पानी पे एक अक्स तैर रहा था। 'पतंग'मैंने नंजर ऊपर की। एक बहुत बड़ी अधकटी पतंग, आधी काली, आधी संफेद कट गयी थी और उसकी डोर कि धूप में बावले की तरह झिलमिला रही थी, मुँडेर से आँगन में, आँगन से मेरे सिर पै। मैंने हाथ बढ़ाया। मगर हाथ में से निकलती चली गयी। मैं तीर की तरह ंजीने में दौड़ा...जीने में अँधेरा...तहख़ाने की खिड़की के पास पहुँच के मेरा दिल धड़कने लगा। मैंने आँखें भींचीं और ऊपर चढ़ता चला गया। एक मोड़, दूसरा मोड़, सीढ़ियाँ, फिर सीढ़ियाँ, उसके बाद फिर सीढ़ियाँ...जैसे चढ़ते-चढ़ते सदी गुंजर गयी हो...फिर खुला जीना आ गया,मगर सीढ़ियों का फिर वही चक्कर, सीढ़ियाँ, और फिर सीढ़ियाँ, और फिर..."

"यार तुम तो ख्वाब की सी बातें कर रहे हो," रंजी ने हैरान हो के उसे देखा।

सैयद ख़ामोश हो गया।

चाँद और ऊपर चढ़ आया था। और चाँदनी उसके पाँयते से उतरती हुई सामने वाली दीवार के किनारों को छूने लगी थी। सुराही के बराबर रखा हुआ गिलास कहीं-कहीं से यूँ चमक रहा था जैसे उसमें चन्द किरनें कैद हो गयी हों।

बशीर भाई और अख्तर बदस्तूर सन्ना रहे थे। ठंडक हो जाने की वजह से बशीर भाई ने दोसूती सिरहाने से हटाकर अपने ऊपर डाल ली थी। और अख्तर की टाँगों पर पड़ी हुई दुलाई अब सीने तक आ गयी थी।

रंजी कई मिनट तक आँखें बन्द किये पड़ा रहा, फिर उकता कर आँखें खोलदीं।

"सैयद!"

"हँ!" सैयद की आवांज नींद का-सा असर पैदा हो चुका था।

"सो रहे हो? यार मेरी तो नींद उड़ गयी।"

सैयद ने नींद से बोझिल आँखें खोलीं, रंजी की तरंफ देखते हुए रहस्य भरे लहंजे में बोला, "मेरा दिल धड़क रहा है, कोई ख्वाब दीखेगा आज।" और उसकी आँखें फिर बन्द होने लगीं।

शीर्ष पर जाएँ